महात्मा गाँधी व मार्क्स की अर्थनीतियों की तुलनात्मक विवेचना

*डॉ. ममता शर्मा

सारांश

प्रायः यही माना जाता है कि निरंतर आर्थिक विकास व वृद्धि से ही दुनिया से गरीबी दूर होगी, लेकिन महात्मा गाँधी ने यह पहचान लिया था कि इस तरह के आर्थिक विकास के तहत गरीबी व विषमता बढ़ने की संभावना भी मौजूद रहती है। अतः उन्होंने आर्थिक विकास को नहीं, बल्कि गरीब आदमी की बुनियादी आवश्यकताओं को अपनी आर्थिक सोच का केंद्र बनाया। उन्होंने देश के नेताओं और नियोजकों से विशेष आग्रह किया कि जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी आजमाओ। जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा है, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा।

मार्क्स द्वारा अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों का विश्लेषण उपभोक्ता और पूँजीगत वस्तुओं के क्षेत्रों में पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित है। उपभोग वृद्धि मुख्य रूप से मजदूरी की मात्रा पर निर्भर है। पूँजीपति अपने लाभ के एक भाग का प्रयोग उपयोग हेतु करता अवश्य है परन्तु वह मुख्य रूप से पूँजी के संग्रह में दिलचस्पी रखता है अतः पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उपयोग व्यय मुख्य रूप से मजदूरी की मात्रा पर निर्भर रहता है।

मुख्य शब्दः गाँधी, गरीब, आर्थिक विकास, मार्क्स, श्रम, पूंजी।

प्रस्तावना

वर्तमान समय में गाँधी व मार्क्स दोनों प्रासंगिक हैं। मार्क्स ना सिर्फ महान चिंतक थे, बल्कि उनकी बौद्धिक स्थापनाओं का आज के संदर्भ में विश्लेषण करने की आवश्यकता है। गाँधीजी ने जहाँ समाज की चिंता अहिंसा के माध्यम से की, वहीं मार्क्स ने हिंसा की आवश्यकता पर बल दिया था। जातिविहीन, वर्ग–विहीन व शोषण से मुक्त समाज का सपना महात्मा गाँधी ने देखा था और उन्होंने सर्वोदय जैसा एक दर्शन उसके लिए विकसित किया। ऐसा ही एक प्रयास कार्ल मार्क्स ने भी किया। मार्क्स ने समाज को शोषण से मुक्त करने के लिए एक क्रांति की प्रक्रिया का मत रखा। उन्होंने अपने इस मत को वैज्ञानिक समाजवाद का नाम दिया। हालांकि क्रांति की प्रक्रिया महात्मा गाँधी ने भी दी, लेकिन उन्होंने स्वयं के संस्कारों के अनुरूप ही उसका स्वरूप प्रस्तुत किया। सत्य का अंश दोनों के ही दर्शन में है। समाज के लिए दोनों ही व्यवस्था बदलाव के पक्षधर रहे, किंतु मार्क्स ने क्रांति के लिए शस्त्रों की राह चुनी, जबकि गाँधीजी ने क्रांति का स्वरूप अहिंसा व सत्याग्रह के अंतर्गत रखा।

दोनों का लक्ष्य एक है, किंतु लक्ष्य प्राप्त करने के तरीके में मूलभूत अन्तर है। सर्वोदय दर्शन की आधारशिला अपने देश की सस्कृति के साथ गहरी जुड़ी हुई है। यही कारण है कि सर्वोदय ने समाज परिवर्तन के लिए अपनी प्राचीन परंपरा के अनुरुप अहिंसा की प्रक्रिया को चुना। यहाँ ध्यान रखने योग्य बिंदु यह है कि कार्ल मार्क्स का दर्शन व्यवस्था का परिवर्तन करने पर टिका है, वहीं सर्वोदय का व्यक्ति परिवर्तन पर।

गाँधीजी की अर्थनीति

महात्मा गाँधी की अर्थव्यवस्था व अर्थशास्त्र के बारे में बहुत मौलिक सोच थी। यह सोच उस समय के प्रचलित विचारों की परवाह न कर सीधे–सीधे ऐसी नीतियों की मांग करती थी जिससे गरीबों को राहत मिले। साथ ही उन्होंने ऐसे सिद्धांत अपनाने को कहा जिनसे दुनिया में तनाव व हिंसा दूर हो तथा पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे। गाँधीजी के लिए विश्व शांति, संतोष व पर्यावरण की रक्षा सबसे महत्वपूर्ण थे। वह इसी के अनुकूल आर्थिक नीतियों की बात करते थे। उन्होंने अर्थनीति और नैतिकता में कभी भेद नहीं किया। गाँधी ने स्पष्ट लिखा मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं अर्थविद्या और नीतिविद्या में कोई भेद नहीं करता। जिस अर्थविद्या से व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि पहुंचती हो उसे मैं अनीतिपूर्ण और पापपूर्ण कहूंगा। उदाहरण के लिए जो नीति एक देश को दूसरे देश का शोषण करने की अनुमति देती है वह अनैतिक है। जो मजदूरों को योग्य मेहनताना नहीं देते और उनके परिश्रम का शोषण करते हैं उनसे वस्तुएं खरीदना या उन वस्तुओं का उपयोग करना पाप है।

उन्होंने शोषण विहीन व्यवस्था की मांग रखी ताकि सबकी बुनियादी जरुरतें पूरी हों। उन्होंने कहा कि गरीब लोगों को भी उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण मिले ताकि उनका शोषण न हो। गाँधी ने लिखा मेरी राय में न केवल भारत की, बल्कि सारी दुनिया की अर्थरचना ऐसी होनी चाहिए कि किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव में तकलीफ न सहनी पड़े। दूसरे शब्दों में हर एक को इतना काम अवश्य मिल जाना चाहिए कि वह अपने खाने–पहनने की जरुरतें पूरी कर सके। यह आदर्श तभी कार्यान्वित किया जा सकता है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में रहें। वह हर एक को बिना किसी बाधा के उसी तरह उपलब्ध होने चाहिए जिस तरह कि भगवान की दी हुई हवा और पानी हमें उपलब्ध है। किसी भी हालत में वे दूसरों के शोषण के लिए चलाए जाने वाले व्यापार का वाहन न बनें। किसी भी देश या समुदाय का उन पर एकाधिकार अन्यायपूर्ण होगा।

हम आज न केवल अपने देश में, बल्कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी जो गरीबी देखते हैं उसका कारण इस सरल सिद्धांत की उपेक्षा है। प्रायः यही माना जाता है कि निरंतर आर्थिक विकास व वृद्धि से ही दुनिया से गरीबी दूर होगी, लेकिन महात्मा गाँधी ने यह पहचान लिया था कि इस तरह के आर्थिक विकास के तहत गरीबी व विषमता बढ़ने की संभावना भी मौजूद रहती है। अतः उन्होंने आर्थिक विकास को नहीं, बल्कि गरीब आदमी की बुनियादी आवश्यकताओं को अपनी आर्थिक सोच का केंद्र बनाया।

उन्होंने देश के नेताओं और नियोजकों से विशेष आग्रह किया कि जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी आजमाओ। जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा है, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त? इस तरह महात्मा गाँधी गरीब आदमी को आर्थिक चिंतन के केंद्र में ले आए।

तेजी से होने वाला तकनीकी बदलाव और मशीनीकरण उस समय की विचारधारा पर भी छाया हुआ था, क्योंकि इसी रास्ते पर चलकर यूरोप में समृद्धि आई थी पर महात्मा गाँधी ने इस विचारधारा को भी चुनौती दी और देश के गरीब किसान, दस्तकार और मजदूर के रोजगार और आजीविका को अंधाधुंध मशीनीकरण से बचाने के लिए जोर दिया। यंत्रों के बारे में उन्होंने कहा कि उससे मनुष्य को सहारा मिलना चाहिए। वर्तमान झुकाव यह है कि कुछ लोगों के हाथ में खूब संपत्ति पहुंचाई जाए और जिन करोड़ों स्त्री–पुरुषों के मुंह से रोटी छीनी है उन बेचारों की जरा भी परवाह न की जाए।

सच्ची योजना तो यह होगी कि भारत की संपूर्ण मानव शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग किया जाए। मानव श्रम की परवाह न करने वाली कोई भी योजना न तो मुल्क में संतुलन कायम रख सकती है और न इंसानों को बराबरी का दर्जा दे सकती है।

इसी तरह गाँधीजी ने कहा मनुष्य का लक्ष्य अपने उपभोग को निरंतर बढ़ाना नहीं अपितु सादगी के जीवन में संतोष प्राप्त करना है। यदि शक्तिशाली व अमीर लोग इस भावना में जिएं तो गरीबों के लिए संसाधन बचने की संभावना कहीं अधिक होगी। उनके शब्दों में, सच्ची सभ्यता का लक्षण संग्रह बढ़ाना नहीं है, बल्कि सोच–समझकर और अपनी इच्छा से उसे कम करना है। ज्यों ज्यों हम संग्रह घटाते जाते हैं त्यों–त्यों सच्चा सुख और संतोष बढ़ता जाता है, सेवा की शक्ति बढ़ती जाती है। त्याग की यह शक्ति हममें अचानक नहीं आएगी। पहले हमें ऐसी मनोवृत्ति पैदा करनी होगी कि हमें उन सुख–सुविधाओं का उपयोग नहीं करना है, जिनसे लाखों लोग वंचित हैं। समता और सादगी को एक महत्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में प्रतिष्ठित कर पर्यावरण का नाम लिए बिना ही महात्मा गाँधी हमें पर्यावरण संरक्षण के मूल से परिचित करा गए। उन्होंने कहा भी कि प्रकृति सब मनुष्यों की जरुरतें तो पूरी कर सकती है, लेकिन लालच नहीं।

काल मार्क्स की अर्थनीति

इसमें संदेह नहीं कि मार्क्स आधुनिक समाजवाद या साम्यवाद का जनक है, परंतु उसकी रुचि केवल समाजवाद के सिद्धांत को प्रतिपादित व प्रस्तुत करने मात्र में ही नहीं थी। यह कार्य तो उससे बहुत पहले ही अन्य लोगों द्वारा कर दिया गया था। मार्क्स की अधिक रुचि इस बात को सिद्ध करने में थी कि उसका समाजवाद वैज्ञानिक है। उसका जिहाद पूंजीपतियों के विरुद्ध जितना था, उतना ही उन लोगों के विरुद्ध भी था, जिन्हें वह स्वप्नदर्शी या अव्यावहारिक समाजवादी कहता था। वह उन दोनों को ही पसंद नहीं करता था। इस बात पर इसलिए ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि मार्क्स अपने समाजवाद के वैज्ञानिक स्वरूप को सबसे अधिक महत्त्व देता था। जिन सिद्धांतों को मार्क्स ने प्रस्तुत किया, उनका उद्देश्य कुछ और नहीं, केवल उसके इस दावे व विचारधारा को स्थापित करना था कि उसका समाजवाद वैज्ञानिक प्रकार का था, स्वप्नदर्शी व अव्यावहारिक नहीं।

मार्क्स ने कहा है कि श्रम मूल्य का कारण एवं माप ही नहीं उसका उपादान भी है। मूल्य का एक मात्र आधार उसके निर्माण में लगा हुआ श्रम है। एडम स्मिथ इत्यादि के समान मार्क्स ने भी मूल्य के दो भेद किये– उपयोगिता मूल्य तथा विनिमय मूल्य। यह भेद अरस्तू के जमाने से चला आ रहा है, परन्तु मार्क्स ने इसे नवीन व्याख्या दी। मुख्य चीज विनिमय मूल्य है, जो एक सार्वजनिक एवं समान वस्तु है और इसका कोई सामान्य आधार होना चाहिए यह आधार श्रम है। वस्तुतः दोनों प्रकार के मूल्यों का निर्माण श्रम से ही होता है, क्योंकि उपयोगिता मूल्य एक व्यक्तिगत चीज हैं अतः उसका आधार व्यक्तिगत श्रम है। विनिमय मूल्य एक सामान्य वस्तु है और इसका आधार भी समाज का श्रम है। उपयोगिता मूल्य का विवेचन मार्क्स ने किया अवश्य है परन्तु उसे महत्त्व नहीं दिया। विनिमय मूल्य ही उनके विवेचन का प्रधान विषय है।

मार्क्स के अनुसार दो वस्तुओं का विनिमय भी उन वस्तुओं में लगे हुए श्रम के अनुपात में होता है। श्रम की समानता ही मूल्य को निर्धारित करती है। मूल्य का आधार उपयोगिता नहीं हो सकती, क्योंकि वह सभी लोगों के लिए अलग–अलग होती है। जो व्यक्ति कोई चीज बेचता है उसकी उपयोगिता बहुत कम होती है, लेकिन खरीददार के लिए उपयोगिता अधिक होती है। परन्तु श्रम ही वह सामान्य तत्त्व है, जो कि दो वस्तुओं की विनिमय की दर या मूल्य को निश्चित करता है। वस्तुओं का मूल्य उसमें लगे घनीभूत श्रम की मात्रा होता है और वस्तुओं के मूल्य में इसी कारण अन्तर होता है कि उनमें श्रम की मात्राएँ भिन्न–भिन्न होती हैं– वस्तु चाहे जो भी हो।

मार्क्स ने लिखा है कि इस समस्या ने अरस्तू को भी भ्रम में डाला था कि आखिर दो वस्तुओं के विनिमय मूल्य को समानता देने वाला कौन सा तत्त्व है। जब यह कहा जाता है कि 5 बिस्तर = 1 मकान, तो ऐसा हम किस आधार पर कहते हैं? अरस्तू के अनुसार ऐसी कोई सामान्य वस्तु नहीं हो सकती। परन्तु मार्क्स ने कहा है कि श्रम ही वह सामान्य वस्तु है जो कि विभिन्न वस्तुओं में मूल्यों को बराबर कर देती है। मूल्य के श्रम सिद्धान्त की सहायता से मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त विकसित किया है। यदि किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उसके निहित श्रम समय के बराबर है तो एक दिये हुए श्रम समय का, उदाहरण के लिए एक दिन के श्रम का विनिमय मूल्य उसके उत्पादन के बराबर होना चाहिए।

दूसरे शब्दों में 'श्रम की मजदूरी श्रमिक के उत्पादन के बराबर होनी चाहिए'। परन्तु पूँजीवादी समाज में ऐसा नहीं होता। मार्क्स ने इसका हल मजदूरी और पूँजी के सम्बन्ध के विश्लेषण द्वारा निकाला है और इसी पर अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त आधारित है।

मार्क्स ने आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उद्यमी को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है, क्योंकि उन्होंने तकनीकी प्रगति पर अधिक जोर दिया था। तकनीकी प्रगति अतिरिक्त पूँजी निर्माण पर निर्भर करती है इसी प्रकार उत्पादन तकनीकी पर निर्भर करता है और उत्पादन का सम्बन्ध निवेश की कुल मात्रा पर निर्भर होता है। मार्क्स निवेश की केवल पूँजीपतियों की आय की मात्रा पर नहीं बल्कि पूँजी पर प्राप्त लाभ की दर पर निर्भर मानते हैं। मार्क्स लाभ की दर के लिए अतिरिक्त मूल्य शब्द का प्रयोग करते हैं। शुद्ध पूँजी निर्माण के लिए मात्र स्रोत अतिरिक्त मूल्य या लाभ है। अतिरिक्त मूल्य या लाभ की मात्रा कुल राष्ट्रीय आय और कुल मजदूरी की मात्रा के अंतर के बराबर है।

मार्क्स के अनुसार कुल मजदूरी की मात्रा कुल निवेश की मात्रा पर निर्भर करती है। परिवर्तित पूँजी में वृद्धि की दर श्रम की माँग को भी निर्धारित करती है। अगर शोषण की दर और श्रम की उत्पादकता दोनों ही स्थिर हैं तो श्रम की माँग या रोजगार की मात्रा निवेश की मात्रा पर निर्भर होगी। मार्क्स द्वारा अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों का विश्लेषण उपभोक्ता और पूँजीगत वस्तुओं के क्षेत्रों में पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित है। उपभोग वृद्धि मुख्य रूप से मजदूरी की मात्रा पर निर्भर है। पूँजीपति अपने लाभ के एक भाग का प्रयोग उपयोग हेतु करता अवश्य है परन्तु वह मुख्य रूप से पूँजी के संग्रह में दिलचस्पी रखता है अतः पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उपयोग व्यय मुख्य रूप से मजदूरी की मात्रा पर निर्भर रहता है। मार्क्स का विश्वास था कि मजदूरी की दर पोषण व्यय के स्तर पर स्थिर रहती है। अतः तकनीकी सुधार के कारण श्रम की उत्पादकता में वृद्धि के बावजूद मजदूरी की दर स्थिर रहती है।

तकनीकी स्तर में वृद्धि के साथ–साथ श्रम की उत्पादकता में वृद्धि के कारण लाभ की मात्रा में भी वृद्धि होती जाती है। पूँजी के संग्रह में वृद्धि के साथ–साथ लाभ की दर में भी गिरावट होती है। चूँकि पूँजीपति पूँजी का अधिक संग्रह लाभ की दर पर आधारित न कर संग्रह के लिए संग्रह करता है अतः लाभ की दर में गिरावट के बावजूद पूँजी का संग्रह बढ़ता जाता है। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मार्क्स के अनुसार अपने लाभ की गिरती दर के समक्ष लाभ की मात्रा को स्थिर बनाए रखने के लिए पूँजीपति निरन्तर अधिक मात्रा में निवेश करने की प्रवृत्ति रखता है। परिणामस्वरूप तकनीकी सुधार लेते है। जिनके साथ सामाजिक विकास से उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन होता है। नये उत्पादन सम्बन्ध नये ढ़ाँचे को जन्म देते हैं और तत्कालीन सामाजिक संस्थाओं को अनुपयुक्त बनाकर नयी सामाजिक अवस्था पैदा करते हैं कुछ समय बाद तकनीकी विकास के साथ–साथ फिर नये उत्पादन सम्बन्ध विकसित होते हैं और प्रचलित संस्थाएँ नए उत्पादन सम्बन्धों के अनुकूल नहीं रहती।

इस प्रकार मार्क्स ने आर्थिक विकास सम्बन्धी विचारों को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मार्क्स का आर्थिक विकास और प्रगति का विश्लेषण एक महान बौद्धिक उपलब्धि थी। उनके विश्लेषण में आर्थिक घटनाओं को प्रमुखता दी गयी है। उनकी प्रक्रिया में तकनीकी प्रगति को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने बचत, निवेश और

दीर्घकालीन विकास में परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट किया है। उनका विश्लेषण गतिशील है तथा अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में भी उपयोगी है। परन्तु उन्हीं विचारों की आलोचना भी की गयी है और कहा गया है कि मार्क्स के विश्लेषण में आर्थिक घटकों पर आवश्यक रूप से अधिक महत्त्व है। आर्थिक घटक, अनार्थिक घटकों के निर्धारक न होकर दोनों एक दूसरे पर क्रिया–प्रतिक्रिया करते हैं। कोई अल्पविकसित राष्ट्रों के आर्थिक पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण दोषपूर्ण सामाजिक और संस्थागत ढाँचा भी है।

निष्कर्ष

महात्मा गाँधी की अर्थव्यवस्था व अर्थशास्त्र के बारे में बहुत मौलिक सोच थी। यह सोच उस समय के प्रचलित विचारों की परवाह न कर सीधे–सीधे ऐसी नीतियों की मांग करती थी जिससे गरीबों को राहत मिले। गाँधीजी ने कहा मनुष्य का लक्ष्य अपने उपभोग को निरंतर बढ़ाना नहीं अपितु सादगी के जीवन में संतोष प्राप्त करना है। यदि शक्तिशाली व अमीर लोग इस भावना में जिएं तो गरीबों के लिए संसाधन बचने की संभावना कहीं अधिक होगी। उनके शब्दों में, सच्ची सभ्यता का लक्षण संग्रह बढ़ाना नहीं है, बल्कि सोच–समझकर और अपनी इच्छा से उसे कम करना है।

मार्क्स ने आर्थिक विकास सम्बन्धी विचारों को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मार्क्स का आर्थिक विकास और प्रगति का विश्लेषण एक महान बौद्धिक उपलब्धि थी। उनके विश्लेषण में आर्थिक घटनाओं को प्रमुखता दी गयी है। उनकी प्रक्रिया में तकनीकी प्रगति को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने बचत, निवेश और दीर्घकालीन विकास में परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट किया है।

***व्याख्याता**
राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय, बहरोड़ (राज.)

सन्दर्भ सूची

1. गांधीजी की अर्थनीति, संवादसेतु–अर्थव्यवस्था, 2 फरवरी, 2011, डोगरा, भारत, दैनिक जागरण, 30 जनवरी 2011.
2. कैपिटल (खण्ड, 1, अध्याय, 6) कार्ल मार्क्स, पृ. 97.
3. दंडवते, मधु, मार्क्स एण्ड गाँधी, मुम्बई, पोपुलर प्रकाशन, 1977, पृ. 17.
4. गाँधी, मदन गोपाल, गाँधी एण्ड मार्क्स, मंथन पब्लिकेशन, रोहतक, 1982, पृ. 39.
5. चतुर्वेदी, डी.एन., गाँधी अर्थनीति, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, 1991, पृ. 20.
6. सिंह, रामजी, गाँधीदर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1986, पृ. 203.
7. झा, राकेश कुमार, गाँधी चिन्तन में सर्वोदय : एक मूल्यांकन, पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1995, पृ. 107.